"हम प्रार्थना क्यों करते हैं ?"

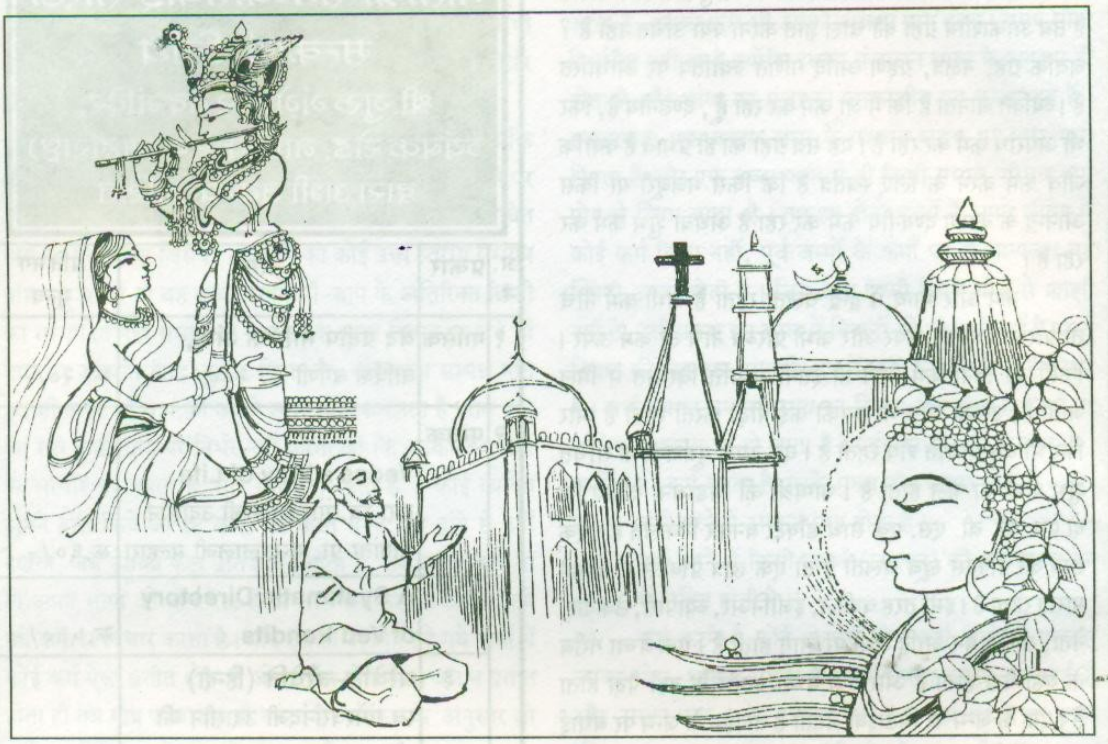

इस संसार में ऐसा कोई भी धर्म नहीं है, जिसमें एक से एक सुन्दर प्रभु-प्रार्थनायें न हों। यहाँ तक कि इस्लाम, जिसमें हिंसा, क्रूरता, सेक्स ही सेक्स है तथा न क्षमा है, न मार्दव है, न आर्जव है, न सत्य है, न शौच है, न संयम है, न तप है, न त्याग है, न आकिंचन्य है और न ही ब्रह्मचर्य है, तो भी उसमें प्रभु-प्रार्थनायें दर्शनीय हैं। हिंदुत्व का शिवपंचाक्षरी-संकल्प ही इस्लाम की पांच बार की नमाज़ है, तो भी न जाने क्यों मुझे वेद में दी गई प्रभु-प्रार्थनायें ही सर्वप्रिय लगती हैं। सच्चाई तो यह है कि इस्लाम का धर्म हिंदुत्व को इसधर्म-परिभाषा "परहित सरिस धरम नहीं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधिमाई ॥" के सर्वथा विपरीत है। क्योंकि गैर इस्लामी को "काफिर" कहा जाता है। जिसके साथ कोई नरमी न बरतने का प्रावधान है। इतना होने पर भी मुस्लिम प्रार्थनायें सर्वोपरि हैं किस प्रकार घुटनों के बल बैठ कर, अपनी नाक जमीन पर रगड़-रगड़ कर एक मुसलमान नियम से दिन में पांच बार, जमीन पर कभी उखड़ूँ बैठकर, कभी खड़े होकर और कभी शाष्ठाँग प्रणाम करता है वह अनुपमेय नहीं, तो अलभ्य अवश्य है। यदि यह बात दमदार नहीं होती तो प्रार्थनाओं के प्रति इतने समर्पित महात्मा गांधी अपनी दैनिक प्रार्थना में उनकी शब्दावली में अल्ला का प्रयोग क्यों करते ? मेरी मान्यता रही है कि जो मेरे शिवशंकर रूपी शिवलिंग हैं, वही तो मुस्लिमों के मक्केश्वर-महादेव हैं जिन्हें हर मुसलमान "संगे-असवद" काला-पत्थर कहता है और भाव-विभोर होकर चुमता है। कहते हैं जिस प्रकार कीड़े-मकोड़ों के चाटते रहने से शालिग्राम की बटिया चिकनी हो गई है, उसी प्रकार मुस्लीमों के बोसा लेने से उनके 'संगे-अवसद' स्निग्ध हो गये हैं, यह सर्वविदित-सत्य है। इतना सत्य समझ लेने पर मैंने भी अपनी प्रभु-प्रार्थनाओं में एक-एक शब्द को पाँच-पाँच बार बोलने का नियम बना लिया है जो आज तक चल रहा है, पर यह सारी की सारी प्रभु-प्रार्थनायें आखिर है क्यों? कभी आपने यह सोचा है? यह सारी प्रभु-प्रार्थनायें इसलिए हैं कि हर प्राणी यानि (मनुष्यात्मा) तीन प्रकार के लौह-पाशों से बँधा है। तभी तो वह हारकर प्रभु से प्रार्थना करता है कि मेरे यह तीनों बंधनों को काट गिराए और मुझे मुक्ति का आनन्द प्रदान करे।

आप सोचेंगे कि वह प्रभु-प्रार्थना कौन-सी है ? तो मैं बताता हूँ। वह प्रभु-प्रार्थना और तीन लौह पाश यह है:-

"उदुत्तमं वरूण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम् ॥"

- ऋग्वेद १/२४/१५

अब ध्यान दीजिए: इस मंत्र के शब्द प्रतिशब्द इस प्रकार हैं:-

१. **वरूण** - हे वरुण करने योग्य समस्त गुणों के भण्डार, सुन्दरतम्-देव अर्थात हे ईश्वर।
२. **अस्मद्** - हमारे
३. **पाशम्**- पाश, बँधन को (यदि वह)
४. **उत्तमम्** - ऊपर का है (तो)
५. **उत्-ऊपर** (को ही)
६. **मध्यमम्** - मध्य का है (तो)
७. **वि**- विलग,अलग,दूर (तो)
८. **अधमम्**-नीचे का है (तो)
९. **अव**- नीचे को ही (गिरा कर)
१०. **श्रथाय**-शिथिल कर दे, समाप्त कर दे।
११. **आदित्य**- हे अखंडित, विनाश रहित।
१२. **अथ-आ-वयम्** - जिससे हम विधिवत्
१३. **तव** - तेरे
१४. **आदितये व्रते** -अखण्डित व्रत में, अखण्ड नियम में।
१५. **अनागसः** - पाप रहित, निष्पाप।
१६. **स्याम्** - होयें, होकर रहें।

हे वरण करने योग्य समस्त गुणों के भण्डार, सुन्दरतम्-देव, हे ईश्वर हमारे पाश, बँधन को (यदि वह) ऊपर का है (तो) ऊपर (को ही) मध्य का है (तो) मध्य में ही विलग,अगल, दूर कर और यदि नीचे का है (तो) नीचे को ही (गिरा कर) शिथिल कर दे, समाप्त कर दे। हे अखंडित, विनाश रहित। जिससे हम विधिवत् तेरे अखण्डित व्रत में, अखण्ड नियम में। पाप रहित, निष्पाप होयें, होकर रहें।

नोट : वेदों में 'वरुण' शब्द बार-बार आया है जो जल के देवता के लिए नहीं -ईश्वर के लिए है।

यहाँ वरुण शब्द का अभिधा अर्थ न वरुण देवता है न ही यह शब्द परमात्मा का नाम है क्योंकि वरुण शब्द 'वृत्र'- वरुणे धातु से बना है अर्थात वरण किए जाने के योग्य। वरण करना अर्थात चुनना, पसंद करना। वरण किया जाता है सुन्दर को, उत्तम को। **परमात्मा न केवल सुन्दर ही है अपितु वह तो सुन्दरतम् यानि परम सुन्दर है। उससे अधिक सुन्दर तो कोई हो ही नहीं सकता। यदि वह सुन्दर न होता तो इस संसार में सौन्दर्य कहाँ से आता ? सृष्टि में जितना सौन्दर्य विद्यमान है सब उसी परम सुन्दर प्रभु की ही एक छाया मात्र से है।** यह इतना लुभावना सौन्दर्य है कि प्राणी इसमें तुरन्त फँस जाता है। परमात्मा का नाम वरूण इसीलिए है कि वह वरण करने योग्य सुन्दर है तभी उसे विद्वान 'वरुण' नाम से पुकारते हैं। यहाँ वरूण शब्द का अर्थ न अभिधा से है, न व्यँजना से है बल्कि लक्षणा से है।

॥ मंत्र का मार्मिक मन्तव्य ॥

'' हे वरुण ! हमारे बौद्धिक मानसिक और वासनात्मक पाश(समूह) को क्रमशः ऊपर नीचे और मध्य में ही, पृथक पृथक करके विनष्ट कर दो।

हे आदित्य ! जिससे हम, विधिवत तुम्हारे अटूट-नियम में निष्पाप होकर रहें।

यदि मनुष्य में इतनी शक्ति होती कि वह अपने ऊपर लगे जन्म-जन्मान्तरों के पाप-पाशों को काटकर खुद ही फेंक देता तो वह भगवान की शरण मे जाता ही क्यों ? जब गज-ग्राह के जबड़े से न छूट सका तभी उसने प्रभु को पुकारा था। जब द्रौपदी की सारी पुकारें बेकार गईं थीं तभी उसने श्रीकृष्ण को पुकारा था और जब अर्जुन के सारे प्रयत्न व्यर्थ हो गए थे तभी तो उसने भगवान की शरण ली थी। उसने रो-रोकर कहा था :-

'' आया शरण मैं आपकी, हूँ शिष्य, शिक्षा दीजिये।
निश्चय कहो, कल्याणकारी ! कर्म क्या मेरे लिये ॥

तब भगवान ने उसे गीता का कर्मयोग समझाया था। यही दशा इस भव- चक्र में फँसे हर प्राणी की है। जीवात्मा परमात्मा से पुकार पुकार कर कह रहा है -''हे वरूण ! हमारे पाश को, हमारे बंधन को शिथिल कर दो।'' साधक जब प्रयत्न करते करते हार गया, जब उससे यह तीनों बंधन नहीं टूटे तब उसके पास इसके अतिरिक्त और क्या उपाय हो सकता है कि वह असीम-शक्ति के भण्डार परमात्मा से यह मांग करे कि वह इन उत्तमताओं (बौद्धिक विलक्षणता, शारीरिक शौर्य और कामुकताजन्य-क्षणिक सुखानुभूतियों) के सारे बंधन काट गिराए। त्रिबन्धनों को काटने की यह प्राणी-प्रार्थना कितनी मार्मिक है, तनिक सोचिये तो। यह तीनों ही बन्धन हैं जो मुक्ति में बाधक हैं।

जब प्रभु प्राणी की यह आर्त्त-पुकार सुनकर उसके त्रिबन्धित-पाशों को धीरे-धीरे शिथिल करके, काटकर गिरा देते हैं। तब वह प्रभु-प्रदत्त आनन्दसागर में गोते लगाता हुआ यह अनुभव करता है -

'' अयं निजो परैवेति गणना लघुचतेसाम्।
उदारचरितानान्तु वसुधैव -कुटुम्बकम् ॥''

इस भावना के जागृत होने का अर्थ ही यह है उसके तीनों पाश काटकर नीचे गिर गए हैं और वह निष्पाप होकर ईश्वरसाक्षात्कार सदृष्य आनन्दानुभूति करके प्रत्येक प्राणी में

अपने को और अपने में प्रत्येक प्राणी को अनुभव कर रहा है। भगवान ऐसे भक्त के लिए गीता में स्वयँ कह उठते हैं :-

''वह दूर मुझसे है नहीं, मैं दूर उससे हूँ नहीं।''

यह प्रभु-प्रार्थना कितनी तर्कसंगत, मनोवैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक है, सोचिए क्या प्रभु कृपा के बिना प्राणी अपने ये तीनों पाश काट सकता है ? कभी नहीं। इन पाशों को ''अव-श्रथाय'' नीचे ही काट गिराने की प्रार्थना प्राणी करता है। वह नहीं चाहता कि इसका विष पुन: ऊपर जाकर उसके मन और मस्तिष्क में जड़ जमाये। ''एतदर्थ- मेव'' यानि उसे पुन: ऊपर जाने देने के लिए वह तैयार नहीं है।

अब प्रश्न यह है कि प्राणी परमात्मा से इनके शिथिल करने की प्रार्थना क्यों करता है, खुद ही क्यों नहीं इन पाशों को काट गिराता ? प्राणी खुद काटना तो चाहता है पर काट नहीं पाता क्योंकि उसकी शक्तियाँ अल्प हैं। इस प्रकार वह असफल रह जाता है। तभी वह सर्वशक्तिमान परमात्मा के आगे गिरकर गिड़गिड़ाता है। जबतक वह गिड़गिड़ाता नहीं है, रोता नहीं है तब तक भगवान भी उसकी प्रार्थना नहीं सुनते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण से रुक्मिणी ने प्रश्न किया कि आपने इतना रोने-धोने और बेइज्जती सह जाने के बाद ही द्रौपदी की पुकार क्यों सुनी, पहले क्यों नहीं सुन ली। तब भगवान ने झट कह दिया कि पहले तो द्रौपदी औरों को पुकार रही थी। उसने जैसे ही मुझे पुकारा मैं वैसे ही उसके पास पहुँच गया। भगवान देर नहीं करते और यदि देर कर भी देते हैं तब वे उस देरी के लिए भक्त से क्षमा भी माँग लेते हैं। हिरण्यकश्यपु का वध करते हुए नृसिंह ने भक्त प्रह्लाद के सिर पर अपना वरदहस्त रखते हुए कहा था :-

''क्षमा करो, हे वत्स ! मुझे आने में यदि हो गया विलम्ब।''

ऐसी प्रार्थनायें जो भक्त द्वारा भगवान तक को बुलाने में सर्वथा समर्थ हो जायें, हैं किसी अन्य धर्म में ? तभी तो मुझे इन प्रार्थनाओं में खो जाने की हरदम इच्छा होती है। नि:संदेह यह वैदिक प्रार्थना महान है। प्रार्थना की शक्ति किसने नहीं मानी है ? स्वयं महात्मा गाँधी कहा करते थे कि यदि मैं प्रार्थना न करता तो पागल हो जाता। कहा भी गया है :-

''दुर्लभ -मानव-तन मिला, साधन-धाम महान।
मत खो लोगों में इसे, भजले श्री भगवान॥
मोह-निशा-तम मिटे सब, समुदित हो रवि-ज्ञान।
पुनर्जन्म से मुक्ति हो, प्रभु-पद में हो स्थान॥''

जीवात्मा परमात्मा से यही तो चाहता है, यही तो उसका मोक्ष है और यही तो उसका लक्ष्य है। चारों वेद (ज्ञान के लिए ऋग्वेद, कर्म के लिए यजुर्वेद, उपासना के लिए सामवेद आदर्शवान बनने के लिए अथर्ववेद) जिस प्राचीन - हिन्दी-प्रार्थना-पद में सार्थक हो उठते हैं, वह प्रार्थना-पद मैं बचपन में गाया करता था। वह प्रार्थना -पद यह है :-

''हे प्रभो ! आनन्ददाता ज्ञान हमको दीजिए।
शीघ्र सारे दुर्गणों को दूर हमसे कीजिए॥
लीजिए हमको शरण में, हम सदाचारी बनें।
सत्यधारी ब्रह्मचारी वीर व्रतधारी बनें॥

जिस कवि ने इस पद को लिखा होगा, निश्चय ही उसके मन-मस्तिष्क में चारों वेदों का सार समाया हुआ होगा। उस कवि पुंगव को आज भी मेरा शतशत प्रणाम है।

प्रार्थनायें मौखिक भी हुआ करती हैं। मौखिक प्रार्थना की ताकत भगवान को रूला तक देती है। यदि किसी को मौखिक प्रार्थना का यह दृष्य-परिदृष्य देखना ही है तो उसे चाहिए कि वह भक्तकवि नरोत्तम दास कृत खंडकाव्य ''सुदामाचरित'' पढ़े, जहाँ भगवान को रोते हुए दिखाया

गया है :-

''देख सुदामा की दीन-दशा, करूणा करके करूणानिधि रोये।
पानी परात को हाथ छुओ नहिं, नयनन के जल सौं पग धोये।।''

भगवान अपने भक्तों की भक्ति का भार उतारते देर नहीं लगाते। सम्राट युधिष्ठर के राजसूय-यज्ञ में स्वयं भगवान ने ऋषि-मुनियों की झूँठी पत्तलें उठाई थीं और उनके चरण धोये थे। भगवान राम ने भीलनी (शबरी) के झूठे बेर कितने प्यार से खाये थे। विधुर-पत्नी के दिये केले के छिलके तक भगवान ने खाए हैं। भगवान तो भाव के भूखे हैं, भक्ति के भूखे हैं किसी अन्य पदार्थ के नहीं। जो भगवान गीधराज जटायु को गोद में उठाकर उसका अन्तिम संस्कार करते हैं। वे भगवान भक्ति के वश में कितनी जल्दी हो जाते हैं यह अनुभव करने की बात है।

मंजुलाचार्य

-आचार्य रसिक बिहारी मंजुल
संपादक''अध्यात्म अमृत''
बी-२०६/सी, रामा पार्क रोड, मोहन गार्डन,
उत्तम नगर, नई दिल्ली- ११० ०५९

***